"साहित्यकार की प्रतिबद्धता का अर्थ है कि वह समाज, मानवीय संबन्धों, विभिन्न सामाजिक संघटनाओं की व्याख्या करने में एक वर्ग विशेष—श्रमजीवी वर्ग की जीवन दृष्टि अपनाये और कला माध्यम से स्वयं अपना परिष्कार करते हुए पूरे समाज का परिष्कार करने में योगदान करे।"

साहित्यकार की प्रतिबद्धता : एक सृजनात्मक तत्व

राजीव सक्सेना

साहित्यकार की रचनात्मकता के मूल्यांकन में उसकी विचारधारा और अपने समय में उसकी सामाजिक स्थिति के अध्ययन और विश्लेषण को सदा महत्व दिया जाता रहा है। सगुण-निर्गुण उपासना, द्वैत-अद्वैत सिद्धान्त, दर्शनशास्त्रों में से किसी एक के प्रति रचनाकार की संलग्नता, विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों या समाज-सुधार आन्दोलनों के प्रति रचनाकार का दृष्टिकोण और उसकी भूमिका आदि की चर्चा से हमारे आलोचना ग्रन्थ भरे पड़े हैं। किन्तु हाल के वर्षों में, विशेषकर दूसरे विश्व युद्ध के बाद शीत-युद्ध के काल में, साहित्यकार की प्रतिबद्धता के विरोध में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं जिन्हें मोटे रूप से आधुनिकतावाद का सार तत्व माना जाता है।

वास्तव में, प्रतिबद्ध शब्द भी आधुनिक युग की उपज है। अब तक साहित्यकार अपनी सामाजिक स्थिति के कारण स्वभावतः शासक वर्गों के निकट ही बना रहता था। विद्रोही सन्त-साहित्यकार भी सामन्ती शासकों के लिए कोई खतरा नहीं बन सके क्योंकि उन्होंने केवल समाज-सुधार और समाज की विभिन्न श्रेणियों के बीच मानवीय सम्बन्धों की स्थापना की ही मांग की। किन्तु पूंजीवादी व्यवस्था के उदय के साथ एक ऐसे वर्ग का, मजदूर वर्ग का, उदय हुआ जो पूरी शोषण व्यवस्था को आमूल नष्ट कर एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करने में समर्थ है जिसमें अब तक के शोषक वर्गों (राजा-महाराजाओं, सामन्तों, पूंजीपतियों, जमींदार-जागीरदारों आदि) का अस्तित्व तक नहीं रह जायेगा। आज समाज में प्रभुत्वशीली पूंजीपति वर्ग और उसके मित्रों (विश्व साम्राज्यवाद और स्थानीय जमींदार तथा चोर व्यापार श्रेणी) के विरुद्ध मजदूर वर्ग तथा उसके मित्रों (किसान और बुद्धिजीवी श्रेणी तथा विश्व समाजवादी खेमा) का संघर्ष ऐसे निर्णयकारी चरण में पहुंच गया है कि साहित्यकार को इन दोनों में से एक का वरण करना अनिवार्य हो जाता है। अगर वह तटस्थ होने का नाटक करता है तो उसका अर्थ है कि अमल में वह प्रभुत्वशील वर्ग के साथ है और श्रमजीवी वर्ग का साथ नहीं देना चाहता।

अतः आज प्रतिबद्धता का अर्थ है कि इस युग के महान क्रान्तिकारी संघर्ष में साहित्यकार श्रमजीवी वर्ग के साथ है।

यह संघर्ष श्रमजीवी वर्ग के लिए राजसत्ता प्राप्त करने का राजनीतिक संघर्ष मात्र नहीं है। यह संघर्ष सदियों से शासक वर्गों द्वारा प्रचलित उन मान्यताओं, जीवन-मूल्यों, नैतिक आदर्शों आदि के विरुद्ध भी है जिनके आधार पर मनुष्य के ऊपर क्रूर व्यवस्थाओं को अब तक

लादे रखा गया था। अर्थात्, यह एक नये जीवन-दर्शन के लिए संघर्ष है। और इस संघर्ष में साहित्यकार समेत तमाम बुद्धिजीवियों के योगदान की आवश्यकता है।

वस्तुतः वर्ग-विभक्त समाज में शासक वर्गों के जीवन-मूल्यों से स्वयं शोषित वर्ग भी ग्रस्त रहते हैं, इसलिए इन जीवन-मूल्यों से अपने को तथा अपनी मित्र-श्रेणियों को मुक्त करने का संघर्ष छेड़े बिना शोषित वर्ग अपनी वर्गीय एकता भी स्थापित नहीं कर सकता और न शोषक वर्गों के विरुद्ध विजय प्राप्त कर सकता है। एक सहयोगी के रूप में जब साहित्यकार सामाजिक रूपान्तर के क्रान्तिकारी संघर्ष में भाग लेने के लिए तैयार होता है तो प्रथमतः उसके लिए आवश्यक होता है कि वह श्रमजीवी वर्ग का दृष्टिकोण अपनाये और शोषक वर्गों के जीवन मूल्यों (आज की भारतीय स्थिति में परम्परागत सामन्ती मूल्यों और नवोदित पूंजीवादी मूल्यों) के उन्मूलन के संघर्ष में भाग लेकर श्रमजीवी वर्ग के जीवन मूल्यों को प्रसारित करने में अपने कला-कौशल का उपयोग करे।

अतः साहित्यकार की प्रतिबद्धता का अर्थ है कि **वह समाज, मानवीय सम्बन्धों, विभिन्न सामाजिक संघटनाओं की व्याख्या करने में एक वर्ग विशेष यानी श्रमजीवी वर्ग की जीवन दृष्टि अपनाये और कला माध्यम से स्वयं अपना परिष्कार करते हुए पूरे समाज का परिष्कार करने में योगदान करे।**

श्रमजीवी वर्ग की जीवन-दृष्टि का सम्पन्न दर्शन है मार्क्सवादी विचारधारा जो यथार्थ को मनोगत दृष्टि के विरुद्ध (मनोगत दृष्टि अनिवार्यतः परम्परागत मानस को प्रतिफलित करती है, फिर चाहे वह कितने ही नये रूप में क्यों न अभिव्यक्त की गयी हो) वस्तुगत दृष्टि से देखने-परखने की शक्ति देती है। किन्तु, यह भी सम्भव है कि कोई व्यक्ति मार्क्सवादी दर्शन पूर्णतया स्वीकार न कर सका हो, मगर मानवतावादी भावनाओं से प्रेरित होकर वह अपने को श्रमजीवी वर्ग के साथ रखता है, शोषक वर्गों के जीवन-मूल्यों पर आघात करता है और इस प्रकार श्रमजीवी श्रेणी के जीवन-मूल्यों को विकसित करने में सहायक बनता है। अतः यहां श्रमजीवी श्रेणी से भावनात्मक तादात्य या पक्षधरता का बड़ा महत्व है, लेनिन ने अपनी एक कृति **"परम्परा जिसको हम तिलांजली देते हैं"**, में लिखा था :

"कोई भी सजीव व्यक्ति एक या दूसरे वर्ग **पक्ष का लिये बिना नहीं** रह सकता (जब वह उन वर्गों का अन्तरसम्बन्ध समझ लेता है), उस वर्ग की सफलताओं पर आनन्द और असफलता पर दुख मनाये बिना नहीं रह सकता, या जो लोग उस वर्ग के विरुद्ध हैं, या जो लोग पिछड़े हुए विचारों का प्रसार कर उस वर्ग के विकास में बाधाएं डालते हैं, उनके प्रति कुछ क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकता, आदि।"

हर्ष-विषाद, प्रेम-घृणा, असन्तोष-आक्रोश...यही तो वह सामग्री है जिससे साहित्य की विभिन्न विधाएं अपना ताना बुनती हैं। अतः साहित्यकार की **प्रतिबद्धता के वस्तुत्व का मुख्य स्रोत है श्रमजीवी वर्ग के प्रति पक्षधरता।**

पक्षधरता एक अत्यन्त रचनात्मक तत्व है। अक्सर आम आदमी के सुख-दुख हर्ष-विषाद, आशा-आकांक्षा का तीव्र संवेदन ग्रहण करने के कारण साहित्यकार अपनी जीवन-दर्शन सम्बन्धी सीमाओं का अतिक्रमण कर यथार्थ का इतना बहुयामी बोध प्राप्त या प्रदान करता है कि उसकी रचना युग की अत्यन्त प्रतिनिधि रचना बन जाती है।

इसके अतिरिक्त श्रमजीवी वर्ग की पक्षधरता से साहित्यकार को प्रचलित जीवन-मूल्यों के ऊपर चढ़े हुए सज्जनता और सभ्यता के मुलम्मे के नीचे-छिपी भौंड़ी और क्रूर वास्त-

विकता को समझने की पैनी दृष्टि मिलती है और उसके विरुद्ध मानव-संवेदनशीलता गहन बनाने तथा श्रमजीवी वर्ग के उपयुक्त प्रतिमूल्यों को जन साधारण के जीवन से खोज लेने की क्षमता प्राप्त होती है।

साथ ही, इस पक्षधरतावश साहित्यकार को आम आदमी के दैनन्दिन जीवन से बहुरंगी शब्द, मुहावरे, बिम्ब और प्रतीक चुनकर अपनी भाषा और अभिव्यंजना को समृद्ध करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। ऐसा साहित्यकार शब्दकोश और शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर कृत्रिम रचना नहीं करता, वास्तविक जीवन के आधार पर सजीव रचना करता है।

अत: **आज के वर्ग-विभक्त समाज में साहित्यकार की प्रबिद्धता साहित्य का एक अत्यन्त रचनात्मक मुख्य तत्व है** जिससे उसकी रचना को नितनयी प्रेरणा, नया वस्तुतत्व, नया शिल्प और नयी अभिव्यंजना प्राप्त होती है। इसकी खोज से साहित्यशास्त्र के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धांत की खोज हुई है जिसका श्रेय श्रमजीवी जनता के दर्शन मार्क्सवाद को है।

आज जब करोड़ों जन राजनीति को अपने हाथ में ले रहे हैं, जब राजनीतिक संघर्षों की परिणति से पूरे समाज के वर्तमान और भविष्य का निर्णय होता है और जब राजनीति से व्यक्तिगत जीवन तक का कोई कोना अछूता नहीं रह गया है, तब कोई साहित्यकार राजनीति से बच नहीं सकता। वास्तव में, आज के समाज में राजनीति का वही स्थान है जो मध्ययुग में धर्म का रहा है।

वस्तुत: अराजनीति की भी अपनी राजनीति है, उसका अर्थ है कि अराजनीति के समर्थक, दरअसल, सताधारी शोषक वर्गों की राजनीति के विरुद्ध कोई संघर्ष नहीं चाहते। यह कोई आकस्मिक नहीं है कि साहित्यकार से अराजनीतिक प्रवृत्ति की मांग करने वाले लोग मुख्यत: श्रमजीवी वर्ग की ही राजनीति पर हमला करते हैं। कभी-कभी वे श्रमजीवी वर्ग की राजनीति के साथ ही शोषक वर्गों की राजनीति से भी अपनी वितृष्णा प्रकट करते हैं और शुद्ध साहित्यधर्मी होने की घोषणाएं करते हैं। इस वागजाल के पीछे यह नहीं छिपाया जा सकता कि यथार्थत: उनका उद्देश्य होता है आम जनता को आराजनीतिक बनाना तथा शोषकों की राजनीतिक निरंकुशता की रक्षा करना।

स्पष्ट ही, राजनीति में दिलचस्पी लिये बिना साहित्यकार अपने समय के समाज की असलियत और शोषकों के दर्शन के झूठ तथा छल-छद्म को बारीकी से नहीं समझ सकता, और न ही ईमानदारी और सच्चाई से सर्वांग और पूर्ण सामाजिक सत्य के बोध से अपनी कला को गहनता प्रदान कर सकता है।

अत: **साहित्यकार की प्रतिबद्धता में अराजनीति के सिद्धान्त को कोई स्थान नहीं है,** क्योंकि यह सिद्धांत रचनाकार को श्रमजीवी जनता से अलग कर शोषक वर्गों से जोड़ता है और कलात्मक नवोन्मेष के एक जीवन्त स्रोत से रचना को विलग कर देता है।

पूंजीवादी व्यवस्था एक संगठित शक्ति है और उसको तोड़ने के लिए एक संगठित और अनुशासित शक्ति की आवश्यकता है। इसलिए श्रमजीवी वर्ग को अपनी संगठित राजनीतिक पार्टी की आवश्यकता होती है जो श्रमजीवी विचारधारा पर आधारित हो। श्रमजीवी वर्ग को निरस्त्र करने के लिए पूंजीवादी वर्ग और उसके हित साधक विचारक दल-हीन और विचारधारा-हीन प्रजातंत्र के सिद्धांत बघारते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि दल-हीन जन-प्रतिनिधि को पैसे के बल पर पूंजीवादी नियंत्रण में रखना आसान होता है और विचारधारा हीनता की स्थिति में इन्हें सुविधावादी बनाया जा सकता है। वस्तुत: सर्वहारा क्रान्ति से भयभीत पूंजीपति वर्ग ने पिछली आधी शताब्दी में, विशेषकर समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति के बाद से,

"यह चिन्ता किये बिना कि उसके लेखन से किस दल को प्रश्रय मिलता है, साहित्यकार श्रमजीवी वर्ग के जीवन-मूल्यों से प्रेरित और अनुप्राणित सर्जना में दत्तचित्त रह सकता है।"

अविवेकशीलता पर आधारित अनेक दार्शनिक सिद्धांतों को जन्म दिया है जिनकी मुख्य स्थापना है कि जीवन अर्थहीन है, सामाजिक घटनाक्रम अत्यन्त आकस्मिक और तर्कहीन है, और दुनिया का विनाश निकट है, इसलिए सामाजिक रूपान्तर का कोई अर्थ नहीं है। वे पार्टी और विचारधारा के प्रति संलग्नता को साहित्यकार की स्वतंत्रता के लिए घातक सिद्ध करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं।

किन्तु एक ऐसी व्यवस्था में जिसमें मुठ्ठी भर शोषक और उनके बुद्धिजीवी बानाधारी अनुचर समाज के समस्त संचार साधनों, रेडियो-टेलीविजन, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशनगृहों आदि पर अधिकार जमाये बैठे हैं, जिस सीमा तक साहित्यकार अपने कृतित्व से शोषक व्यवस्था का पर्दाफाश करने, शोषित वर्गों में वर्ग-चेतना तथा संगठित होने की भावना पैदा करने, मानव-सम्बन्धों की जटिलता को समझने और सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदन जागृत करने का काम करता है, उस सीमा तक वह अपनी स्वतन्त्रता का क्षितिज विस्तृत बनाता है। वर्ग-विभक्त समाज में 'स्वतंत्रता' का यही अर्थ है। पूंजीवादी वर्ग 'स्वतंत्रता' की बात करता है तो उसका अर्थ है कि साहित्यकार श्रमजीवी वर्ग के आन्दोलन के विरुद्ध काम करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है, इतना कि इस काम के दौरान अगर वह स्वयं अपने स्वामियों की किंचित आलोचना भी कर दे तो क्षम्य माना जायगा।

यहां यह नोट करना आवश्यक है कि वर्ग विभक्त समाज में साहित्यकार के लिए यह आसान नहीं होता कि वह (पूंजीवादी संस्थान या सरकारी नौकरियों में होने के कारण) खुले आम श्रमजीवी वर्ग की पार्टी का सदस्य बन सके। किन्तु जब तक इस विवशता को छिपा कर वह अपनी स्थिति को 'साहित्यकार की वर्गेतर और पार्टीहीन स्थिति की सहजता और अनिवार्यता' का सिद्धान्त बनाकर पेश करने और श्रमजीवी वर्ग की पार्टी से जुड़े साहित्यकारों पर कीचड़ उछालने का काम नहीं करता, दूसरे शब्दों में, श्रमजीवी वर्ग के संगठनों पर हमला नहीं करता, तब तक श्रमजीवी वर्ग उसे अपना शत्रु नहीं मानेगा। क्योंकि किसी विवशता वश श्रमजीवी वर्ग की पार्टी और उसकी विचारधारा से खुली प्रतिबद्धता न कर पानेवाला साहित्यकार भी अनेक अप्रत्यक्ष माध्यमों से श्रमजीवी वर्ग की विचारधारा और संगठन की सहायता कर सकता है।

एक ऐसे समय में जब श्रमजीवी वर्ग की पार्टी कई हिस्सों में, कई दलों में विभाजित हो, तब यह सम्भव है कि साहित्यकार उनमें से किसी एक से सम्बद्ध हो या सभी से असम्बद्ध हो। ऐसी स्थिति में **यह चिन्ता किये बिना कि उसके लेखन से उनमें से किस दल को सहायता मिलता है, साहित्यकार श्रमजीवी वर्ग के जीवन-मूल्यों से प्रेरित और अनुप्राणित सर्जना में दत्तचित्त रह सकता है।**

इस सिलसिले में यह ध्यान देने योग्य है कि पूंजीवाद के अनुचर लोग पार्टी और साहित्यकार के सम्बन्धों को जानबूझकर गलत रूप में पेश करते हैं। प्रथमतः वे पार्टी और साहित्यकार के सम्बन्धों को एकतरफा बताते हैं यानि कि पार्टी साहित्यकार को अनुशासित रखती है और पार्टी के निर्माण या अनुशासित स्वरूप में साहित्यकार का कोई योगदान नहीं होता। यह यथार्थ स्थिति नहीं है। पार्टी और व्यक्ति का वही सम्बन्ध है जो समाज और व्यक्ति

है, दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक-दूसरे का निर्माण भी करते है।

दूसरे, जहां पार्टी के अन्दर वाद-विवाद के बाद सभी प्रश्नों पर एकात्मक रुख अपनाने पर बल दिया जाता है, वहां साहित्य इसका अपवाद है। मजदूर वर्ग की पार्टी के सांगठनिक नियमों के निर्माता लेनिन ने अपने सुप्रसिद्ध निबन्ध 'पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य' में स्पष्ट कहा था कि साहित्य को 'सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लक्ष्य के अन्य पक्षों के साथ यांत्रिक रूप से एक रूप नहीं बनाया जा सकता' और साहित्य पर 'यांत्रिक समंजन अथवा उसको एक स्तर बनाने, या अल्पमत के ऊपर बहुमत के नियम नहीं चलते।' उन्होंने कहा कि साहित्य क्षेत्र में पार्टी को "व्यक्तिगत पहलकदमी, व्यक्तिगत रुझान, विचार और फंतासी तथा विविध रूप तत्व और वस्तुत्व के लिए" अधिकाधिक गुंजाइश देखनी चाहिए।

अतः साहित्यकार की प्रतिबद्धता में श्रमजीवी वर्ग के जीवन दर्शन की ही नहीं, साहित्य और कलाओं की अनुभूति प्रधानता तथा रचनाकार की मौलिक प्रतिभा को पूर्ण मान्यता दी जाती है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि साहित्यकार की प्रतिबद्धता में श्रमजीवी जनता से तादात्म्य वह मूल विन्दु है जिससे आगे बढ़कर साहित्यकार समाज में वर्गों और व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों तथा अन्तरप्रक्रियाओं को समझने के लिए श्रमजीवी जनता की दृष्टि से यथार्थ को सूक्ष्मतः देखने की क्षमता जुटाता है और जन-जीवन को एक रचनात्मक शक्ति स्वीकार कर उससे भाषा, शिल्प और कला-रूपों का निर्माण करने के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करते हुए अपनी कला को एक आत्मीय और नया रूप देता है। आधुनिक साहित्यशास्त्र में साहित्यकार की प्रतिबद्धता का सिद्धांत अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है। □

*अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (बम्बई—मार्च १९७५) में पढ़ा गया लेख।

तीसरी दुनिया के बारे में

हां, हम कट्टर ही सही।
क्योंकि हम रोटी को
इन्सान की सबसे बड़ी जरूरत कहते हैं।
और बन्दूक को
उसे पाने का
सबसे सही रास्ता मानते हैं।

क्यूबा के कवि :
डेविड फर्नान्डेज चेरीसीयान
(जन्म : १९४०)

रूपान्तर : नरेश कुमार